एशेरीशिया कोलाई

सुशील जोशी

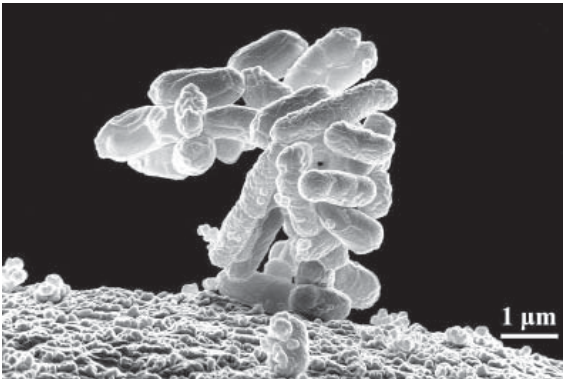

चित्र-1: *ई. कोलाई बैक्टीरिया का समूह, 10,000 गुना आवर्धन।*

कुछ इतिहास

सन् 1885 में एक जर्मन-ऑस्ट्रियन शिशुरोग विशेषज्ञ, थियोडोर एशेरिश ने नवजात बच्चों की आँतों में से बैक्टीरिया प्राप्त किए थे। ये बैक्टीरिया ग्राम (लेक्टोस निगेटिव) निगेटिव थे, थोड़ी चहलकदमी करते थे और सबसे बड़ी बात थी कि ये कई उपलब्ध कृत्रिम पोषक माध्यमों पर भलीभाँति वृद्धि करते थे। एशेरिश ने इन्हें नाम दिया था *बैक्टीरियम कोलाई कम्यून।* आगे चलकर सन् 1919 में इसे खोजकर्ता के नाम पर *एशेरीशिया कोलाई* (*Escherichia coli* - *ई. कोलाई*) नाम मिला।

उस समय खोजकर्ता को तनिक भी आभास नहीं था कि सूक्ष्मदर्शी में यह साधारण-सा दिखने वाला बैक्टीरिया जीव विज्ञान अनुसन्धान में इतना नाम कमाएगा और कमोबेश आणविक जीव विज्ञान का आगाज़ करने वाला जीव बन जाएगा।

नेचर में प्रकाशित एक समीक्षा पर्चे के अनुसार *ई. कोलाई* कम-से-कम 3,12,000 शोध पत्रों का विषय रहा है। इसी बैक्टीरिया पर अनुसन्धान के लिए 11 नोबेल पुरस्कार मिल चुके हैं (देखिए तालिका-1)।

फिर 1907 में रुडोल्फ मैसिनी ने एक सूक्ष्मजीव का विवरण प्रस्तुत किया – *बैक्टीरियम कोलाई म्यूटेबाइल* (*Bacterium coli mutabile*)। उन्होंने जब

तालिका 1: *ई. कोलाई* अनुसन्धान और नोबेल पुरस्कार

1958	जोशुआ लेडरबर्ग	बैक्टीरिया में लिंग और जेनेटिक पुनर्मिश्रण
1965	फ्रांस्वा जैकब, आंद्रे ल्वॉफ और जैकेस मोनोड	एंज़ाइमों का जेनेटिक नियंत्रण और वायरस संश्लेषण
1969	मैक्स डेलब्रुक, अल्फ्रेड हर्शे और साल्वेडोर लूरिया	*ई. कोलाई* और बैक्टीरिया को संक्रमित करने वाले वायरसों (बैक्टीरियोफेज) की मदद से वायरस के प्रतिलिपिकरण की क्रियाविधि और जेनेटिक संरचना
1978	वर्नर आर्बर, डेनियल नाथन्स और हैमिल्टन स्मिथ	*ई. कोलाई* में रेस्ट्रिकशन एंज़ाइम की खोज व अनुप्रयोग
1980	पौल बर्ग, वाल्टर गिलबर्ट और फ्रेडरिक सैंगर	न्यूक्लिक एसिड के जैव-रसायन पर महत्वपूर्ण अध्ययन जिसमें *ई. कोलाई* ने रीकॉम्बिनेन्ट डीएनए टेक्नॉलॉजी के विकास में अहम भूमिका निभाई
1989	सिडनी आल्टमैन और थॉमस चेक	*ई. कोलाई* पर अनुसन्धान के ज़रिए आरएनए की उत्प्रेरक भूमिका की खोज – आरएनए की एंज़ाइम प्रकृति
2008	ओसामु शिमोमुरा, मार्टिन चाफी और रॉजर त्सिएन	ग्रीन फ्लोरेसेंट प्रोटीन की खोज
2014	एरिक बेटज़िग, स्टीफन हेल और विलियम मोर्नर	कोशिकाओं की अन्दरूनी संरचना के अध्ययन के लिए सुपर-रिसॉल्व्ड माइक्रोस्कोपी का विकास
2015	थॉमस लिंडाल, पौल मॉडरिच और अज़ीज़ शंकर	*ई. कोलाई* पर शोध की मदद से डीएनए मरम्मत की क्रियाविधि की समझ
2021	आर्डेम पेटापुटियन	यांत्रिक-संवेदी चैनल पर अनुसन्धान। इन चैनल्स की खोज प्रारम्भिक रूप से *ई. कोलाई* में की गई थी।
2022	स्वांते पाबो	होमिनिन जीनोम का विकास

इसे प्राप्त किया तो शुरुआत में यह लैक्टोस पाचन में अक्षम (लैक्टोस नेगेटिव) था लेकिन आगे चलकर इसमें कुछ उभार विकसित हो गए जो लैक्टोस का किण्वन यानी फर्मेन्टेशन कर सकते थे। यह खोज थी जिसने *ई. कोलाई* पर आगे अध्ययन की प्रेरणा दी जिसकी बदौलत आणविक जीव विज्ञान का सूत्रपात हुआ।

1940 के दशक में एम. डेलब्रुक और एस.ई. लूरिया *ई. कोलाई* और उसे संक्रमित करने वाले वायरसों (बैक्टीरियोफेज या फेज) पर काम कर रहे थे। उन्होंने पाया कि बैक्टीरिया में उत्परिवर्तन स्वत:स्फूर्त होते हैं। हर्शे और चेज़ यह भी दिखा पाए कि वायरस का जो हिस्सा बैक्टीरिया को संक्रमित करता है, वह डीएनए होता है। लगभग इसी समय एस. बेंज़र ने आनुवंशिकी की कामकाजी इकाई को परिभाषित किया और जे. लेडरबर्ड और ई. टेटम ने यह खोज की कि बैक्टीरिया में लैंगिक पुनर्मिश्रण होता है।

आगे चलकर *ई. कोलाई* तथा उसे संक्रमित करने वाले वायरसों की मदद से पुनर्संयोजित डीएनए (recombinant DNA) तकनीक का विकास हुआ। तो चलते हैं, आणविक जीव विज्ञान के एक लम्बे सफर पर।

चित्र-2: *ई. कोलाई के विकास का वीडियो देखने के लिए QR code स्कैन करें।*

एक मॉडल जीव के रूप में खूबियाँ

एशेरीशिया कोलाई छड़ के आकार का बैक्टीरिया है जो लगभग 2 से 5 माइक्रोमीटर लम्बा और 0.5 से 1 माइक्रोमीटर चौड़ा होता है। यह इतना बड़ा तो होता है कि सूक्ष्मदर्शी से अवलोकन किया जा सके। एक मॉडल जीव के रूप में *ई. कोलाई* में कई विशेषताएँ हैं। यह तेज़ी-से वृद्धि करता है, इसमें जेनेटिक फेरबदल के लिए कई आणविक तकनीकें उपलब्ध हैं। एक खास बात यह है कि *ई. कोलाई* प्रमुखत: अलैंगिक रूप से अपनी प्रतिलिपियाँ बनाता है – अर्थात् किसी एक बैक्टीरिया के जीनोम में किए गए परिवर्तन कई पीढ़ियों तक बने रहते हैं और इनके असर का अध्ययन लगातार किया जा सकता है।

इन्हीं सब खूबियों के चलते *ई. कोलाई* का उपयोग करके आणविक जीव विज्ञान और आणविक जेनेटिक्स के क्षेत्र में कई प्रमुख खोजें की गई हैं। इनमें जेनेटिक कोड को समझना,

---

ई. कोलाई के विकास का वीडियो यहाँ देखें:
https://en.wikipedia.org/wiki/Escherichia_coli#/media/File:E.coli-colony-growth.gif

डीएनए के प्रतिलिपिकरण की प्रक्रिया की समझ, जीन नियमन की ऑपेरॉन प्रणाली की खोज, और जेनेटिक रूप से परिवर्तित जीव बनाना शामिल हैं।

ई. कोलाई का जीनोम

ई. कोलाई के कई स्ट्रेन (प्रभेद) होते हैं जो आनुवंशिक रूप से थोड़े-थोड़े भिन्न समूह के द्योतक हैं। इनकी रोगजनक क्षमता अलग-अलग होती है। कुछ हैं जो गम्भीर संक्रमण पैदा करते हैं (जैसे O157:H7 स्ट्रेन) जबकि कुछ अन्य रोगजनक नहीं होते। उनकी यह विविधता उनके जीनोम में नज़र आती है। प्रयोगों से पता चला है कि *ई. कोलाई* के K-12 स्ट्रेन (जिसे प्रयोगशाला में पाला जाता है और रोगजनक नहीं है) और O157:H7 तथा CFT073 स्ट्रेन (दोनों रोगजनक) के जीनोम्स के बीच मात्र 39 प्रतिशत समानता है।

ई. कोलाई के सारे स्ट्रेन्स के जीनोम में कुल मिलाकर 16,000 जीन्स होते हैं जिसे पैन-जीनोम कहते हैं लेकिन इस पैन-जीनोम का एक अंश ही किसी स्ट्रेन-विशेष में पाया जाता है – लगभग 20 प्रतिशत। यानी शेष 80 प्रतिशत जीनोम परिवर्तनशील होता है। ये जीन्स बाहर से हासिल किए जा सकते हैं और ये *ई. कोलाई* को चयापचय यानी मेटाबॉलिज़्म में काफी लचीलापन प्रदान करते हैं। परिवर्तनशील जीनोम में नए-नए घटक शामिल करने की इस खूबी के चलते *ई. कोलाई* एक बढ़िया मॉडल बन सका है। 1997 में *ई. कोलाई* उन पहले-पहले जीवों में से था जिसके पूरे जीनोम के डीएनए अनुक्रम का खुलासा हो गया था।

फेज ग्रुप

दरअसल, आणविक जीव विज्ञान के विकास की शुरुआत मैक्स डेलब्रुक और साल्वेडोर ई. लूरिया द्वारा 1940 में 'फेज ग्रुप'* के गठन के साथ मानी जा सकती है, जिसमें आगे चलकर अल्फ्रेड डी. हर्शे भी जुड़ गए थे। इसी के साथ *एशेरीशिया कोलाई* और उसे संक्रमित करने वाले वायरस आणविक जीव विज्ञान अध्ययन की बुनियादी सामग्री बन गए।

मज़ेदार बात यह है कि डेलब्रुक एक क्वांटम भौतिक शास्त्री थे। वे जर्मनी से यू.एस. पहुँचे थे और एमरी हिल्स के साथ बैक्टीरियोफेज पर काम करने लगे थे। सन् 1939 में इन दोनों ने मिलकर बैक्टीरियोफेज की संख्या वृद्धि का एक संख्यात्मक पर्चा प्रस्तुत किया था। दूसरी ओर, लूरिया एक इतालवी डॉक्टर थे और वे भी यूएस पहुँचकर डेलब्रुक के साथ काम करने लगे।

---

* *फेज ग्रुप वैज्ञानिकों का एक शोध-समूह था, जो बैक्टीरिया को संक्रमित करने वाले विषाणुओं (बैक्टीरियोफेज) का अध्ययन करता था। इस समूह ने जीन की प्रकृति और आणविक जीवविज्ञान के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।*

कुछ प्रमुख खोजों में भागीदार *ई. कोलाई*

बैक्टीरिया में वायरस प्रतिरोध

डेलब्रुक और लूरिया ने बैक्टीरिया में वायरस-प्रतिरोध पर काम करना तय किया। वे यह जानना चाहते थे कि बैक्टीरिया में वायरस के विरुद्ध प्रतिरोध क्या बेतरतीब उत्परिवर्तनों में से चयन के ज़रिए होता है या क्या यह वायरस से सम्पर्क से जनित अनुकूलन का परिणाम होता है। इसके लिए उन्होंने *ई. कोलाई-बी* स्ट्रेन पर प्रयोग किए। उन्होंने कुछ बैक्टीरिया को अलग-अलग संवर्धन नलिकाओं में पनपाया। कुछ समय बाद इन अलग-अलग कल्चर में से बराबर-बराबर आयतन लिए और उन्हें टी-1 नामक फेज से संतृप्त तश्तरियों (पेट्री डिश) में डाल दिया। यह माना गया था कि यदि वायरस के खिलाफ प्रतिरोध सम्पर्क के बाद पैदा होता है तो सारी तश्तरियों में लगभग बराबर-बराबर प्रतिरोधी बैक्टीरिया मिलने चाहिए। प्रयोग में देखा गया कि विभिन्न तश्तरियों में प्रतिरोधी बैक्टीरिया की औसत संख्या में बहुत अन्तर है। निष्कर्ष था कि बैक्टीरिया में प्रतिरोध बेतरतीब उत्परिवर्तनों की वजह से पैदा होता है और यह वायरस की उपस्थिति से स्वतंत्र है। इस प्रयोग को आधुनिक बैक्टीरिया जेनेटिक्स की शुरुआत माना जाता है। इस प्रयोग में उत्परिवर्तन की दर का निर्धारण भी किया जा सका था।

बैक्टीरिया जीन्स का पुनर्संयोजन

इसी दौरान हर्शे भी इस 'फेज ग्रुप' में शामिल हो गए। वे पहले ही *ई. कोलाई* के वायरसों पर शोध करके यह दर्शा चुके थे कि जब एक ही कोशिका में एक से अधिक वायरस उपस्थित हों, तो उनके बीच जेनेटिक पुनर्संयोजन हो जाता है। इसके लिए उन्होंने एक ही *ई. कोलाई* कोशिका को वायरसों के दो संस्करणों से संक्रमित किया। इनसे जो वायरस

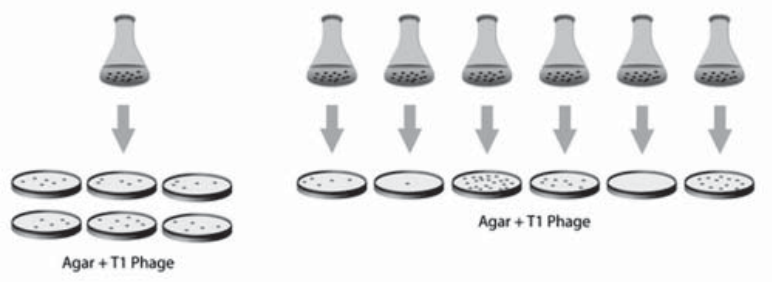

चित्र-3: *डेलब्रुक और लूरिया का प्रयोग*

सन्तति प्राप्त हुई, उनमें मूल वायरस जैसी जेनेटिक संरचना वाले वायरस तो थे ही, साथ में कुछ ऐसे वायरस भी थे जिनमें जीन्स का लेनदेन हो चुका था।

आनुवंशिकी पदार्थ की पहचान

बहरहाल, हर्शे को शोहरत मिली थी मार्था चेज़ के साथ किए गए प्रयोगों से। हर्शे और चेज़ ने टी-2 फेज के डीएनए को रेडियोसक्रिय फॉस्फेट (^{32}P) से चिन्हित कर दिया, और उन्हें *ई. कोलाई* कोशिकाओं को संक्रमित करने दिया। गौरतलब है कि फॉस्फोरस डीएनए में ही पाया जाता है, प्रोटीन में नहीं। इन संक्रमित कोशिकाओं से फेज का प्रोटीन आवरण हटा दिया और फिर संक्रमित कोशिकाओं तथा वायरस के आवरणों को अलग-अलग कर लिया। देखा गया कि रेडियोसक्रियता सिर्फ नीचे बैठ गई बैक्टीरिया कोशिकाओं में उपस्थित थी जबकि ऊपर के द्रव (जिसमें प्रोटीन आवरण थे) में नहीं थी। यानी डीएनए ही बैक्टीरिया कोशिका में प्रवेश कर गया था।

इसी तरह के एक अन्य प्रयोग में उन्होंने फेज को रेडियोसक्रिय सल्फेट से चिन्हित कर दिया, चूँकि सल्फर प्रोटीन में पाया जाता है, डीएनए में नहीं। अलग-अलग करने पर रोडियो-सक्रियता सिर्फ प्रोटीन आवरण में मिली, संक्रमित बैक्टीरिया में नहीं।

इन परिणामों से, हर्शे और चेज़ ने निष्कर्ष निकाला कि आनुवंशिक पदार्थ डीएनए है, प्रोटीन नहीं। यह प्रयोग आनुवंशिकी के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण मोड़ था, जिससे यह स्पष्ट हो गया कि आनुवंशिक जानकारी का वहन डीएनए करता है, प्रोटीन नहीं।

डेलब्रुक, लूरिया और चेज़ को प्रतिलिपिकरण तथा वायरसों की जेनेटिक संरचना सम्बन्धी खोजों के लिए 1969 में नोबेल से नवाज़ा गया था।

इसके बाद ग्रुप ने तय किया कि वे कई अन्य टी-फेज पर काम करेंगे जो *ई. कोलाई* के बी स्ट्रेन के विरुद्ध सक्रिय होते हैं। इनमें से एक फेज (टी-4) का शानदार उपयोग सीमोर बेंज़र ने किया। यहाँ बताना लाज़मी है कि बेंज़र ने अपना करियर एक सॉलिड स्टेट भौतिक शास्त्री के रूप में शुरू किया था लेकिन इर्विन श्रोडिंगर की पुस्तक *व्हॉट इज़ लाइफ?* से प्रभावित होकर अपने प्रयोगों से उन्होंने साबित किया कि न्यूक्लियोटाइड्स की एक न्यूनतम लम्बाई ही जेनेटिक इकाई होती है, जिसे उन्होंने सिस्ट्रॉन नाम दिया था।

जेनेटिक लेन-देन

द्वितीय विश्व युद्ध की रुकावट के बाद शोध परिणामों का आदान-प्रदान फिर शुरू हुआ। एक तो डेलब्रुक और हर्शे ने फेज वायरसों में जेनेटिक पुनर्संयोजन की अपनी खोज प्रस्तुत की और इसी के साथ जोशुआ

वास्तविकता में बैक्टीरिया में नर और मादा लिंग नहीं होते हैं; वे द्विविभाजन द्वारा अलैंगिक रूप से प्रजनन करते हैं। हालाँकि, संयुग्मन नामक प्रक्रिया को रूपकात्मक रूप से जीवाणु 'सम्भोग' कहा जा सकता है, जहाँ एक दाता (तथाकथित नर) अपने प्लास्मिड डीएनए का एक टुकड़ा प्राप्तकर्ता (तथाकथित मादा) को स्थानान्तरित करता है, जिससे युग्मकों के संलयन के बिना आनुवंशिक जानकारी का आदान-प्रदान होता है।

लेडरबर्ग ने *ई. कोलाई* (स्ट्रेन के-12) पर अपने प्रयोगों के आधार पर दर्शाया कि बैक्टीरिया के बीच लैंगिक पुनर्मिश्रण होता है। आगे बैक्टीरिया जेनेटिक्स पर लगभग सारा अनुसन्धान इसी स्ट्रेन पर हुआ। यह खोज इस मायने में महत्वपूर्ण थी कि बैक्टीरिया में परस्पर जेनेटिक सूचना का लेनदेन हो सकता है जो उन्हें नए गुणधर्म प्रदान कर सकता है। यह खोज बैक्टीरिया में एंटीबायोटिक्स के खिलाफ प्रतिरोध के तेज़ी-से प्रसार को समझने में मददगार है।

लेडरबर्ग ने ही गुणसूत्र के बाहर जेनेटिक कणों (प्लास्मिड) की खोज की थी। यह खोज उन्होंने अपनी पत्नी एस्थर मिरियम लेडरबर्ग, एन. डी. ज़िंडर और एम.एल. मोर्स के साथ की थी। इसके बाद उन्होंने बैक्टीरिया के बीच जेनेटिक लेन-देन की एक नवीन विधि की खोज की जो बैक्टीरिया को संक्रमित करने वाले वायरसों (बैक्टीरियोफेज) के ज़रिए सन्पन्न होती है। यह खोज आगे चलकर जेनेटिक पुनर्संयोजन टेक्नॉलॉजी का आधार बनी।

बैक्टीरिया में जेनेटिक पुनर्संयोजन/ हस्तान्तरण

लेडरबर्ग और टेटम ने काफी परिष्कृत प्रयोगों की मदद से *ई. कोलाई* में जेनेटिक हस्तान्तरण की खोज की (1946)। पुनर्संयोजन सम्बन्धी प्रयोगों के लिए लेडरबर्ग ने टेटम द्वारा विकसित पोषण-बाधित दोहरे उत्परिवर्तियों का उपयोग किया था। अलबत्ता, उस समय वे नहीं जानते थे कि यह *ई. कोलाई* स्ट्रेन (के-12) उन बिरले स्ट्रेन्स में से है जिनमें एफ-प्लास्मिड पाया जाता है। एफ-प्लास्मिड को फर्टिलिटी फैक्टर भी कहते हैं और यह बैक्टीरिया के संयुग्मन में भूमिका निभाता है। प्लास्मिड की खोज का श्रेय भी *ई. कोलाई* की मदद से लेडरबर्ग को ही जाता है।

उनके समूह ने यह भी बताया था कि प्लास्मिड ही नर व मादा बैक्टीरिया के बीच जेनेटिक गुणधर्मों के हस्तान्तरण का साधन होता है। आम तौर पर यह जानकारी है कि कोशिकाओं में जेनेटिक जानकारी गुणसूत्रों में सहेजी गई होती है। लेडरबर्ग व अन्य ने स्पष्ट किया था

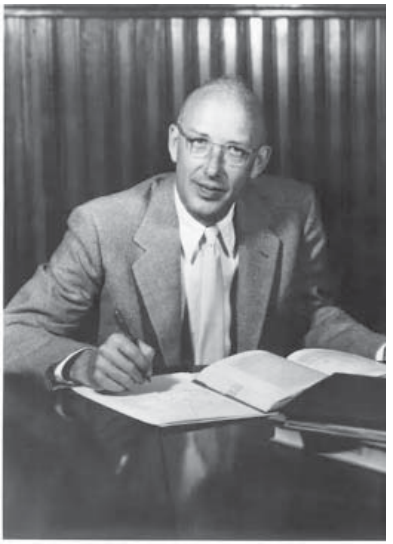

चित्र-4: *लेडरबर्ग और टेटम*

कि बैक्टीरिया व कुछ अन्य जीवों में गुणसूत्र से अलग जेनेटिक सामग्री वृत्ताकार अणुओं के रूप में पाई जाती है, जिन्हें प्लास्मिड कहते हैं।

शोधकर्ताओं ने अपने प्रयोग के लिए *ई. कोलाई* के ऐसे स्ट्रेन्स को चुना था जो उत्परिवर्तनों के कारण कतिपय ज़रूरी वृद्धि कारक बनाने में अक्षम थे। इन दोनों स्ट्रेन्स को एक ऐसे माध्यम में रखा गया जिसमें बैक्टीरिया वृद्धि के कुछ विशिष्ट पोषक तत्व नहीं थे। यानी ये दोनों ही अलग-अलग पोषक तत्वों की कमी के कारण उस माध्यम में नहीं पनप सकते थे।

तर्क यह था कि यदि ये स्ट्रेन्स जेनेटिक पदार्थों का लेनदेन न करें, तो दोनों ही पनप नहीं पाएँगे। लेकिन यदि जेनेटिक पदार्थ का लेनदेन हो जाता है तो दोनों स्ट्रेन्स में से कुछ बैक्टीरिया तो पनपेंगे। इस माध्यम को बैक्टीरिया वृद्धि के लिए सही तापमान वगैरह देकर कुछ समय बाद देखा गया कि इस अभावग्रस्त माध्यम में भी बैक्टीरिया की कुछ कॉलोनियाँ तो विकसित हो गईं। यानी कुछ बैक्टीरिया ने दूसरे स्ट्रेन से जेनेटिक सामग्री प्राप्त कर ली थी। यानी जेनेटिक पुनर्संयोजन हुआ था।

लेकिन इस प्रयोग से यह स्पष्ट नहीं हो पाया था कि क्या इस तरह के लेनदेन के लिए बैक्टीरिया का

सम्पर्क में आना ज़रूरी है। वह प्रमाण बर्नार्ड डेविस ने एक सुन्दर प्रयोग के माध्यम से उपलब्ध कराया। बर्नार्ड डेविस का वह प्रयोग यू-ट्यूब प्रयोग के नाम से मशहूर है।

उन्होंने एक U आकार की नली ली जिसमें आधार पर एक फिल्टर लगा था। फिल्टर ऐसा था कि उसमें से माध्यम के पदार्थ तो आ-जा सकते थे लेकिन बैक्टीरिया की कोशिकाएँ नहीं। दोनों तरफ की नलियों में वृद्धि माध्यम भर दिया गया और दोनों तरफ अलग-अलग स्ट्रेन के बैक्टीरिया (जिनकी पोषक तत्वों की ज़रूरतें अलग-अलग थीं) डाले गए। एक पम्प की मदद से नली के एक हिस्से से दूसरे में लगातार पोषक माध्यम की आवाजाही चलती रही।

कुछ समय बाद जब इन बैक्टीरिया को एक तश्तरी में डाला गया जिसमें वह अभावग्रस्त पोषक माध्यम था तो एक भी कॉलोनी विकसित नहीं हुई। यानी जेनेटिक लेनदेन नहीं हुआ था। इस प्रयोग के आधार पर डेविस यह दिखा पाए कि जेनेटिक लेनदेन के लिए बैक्टीरिया कोशिकाओं का सीधे सम्पर्क ज़रूरी है।

इस खोज का बैक्टीरिया जेनेटिक्स में तो खासा असर रहा ही, परन्तु साथ ही इसने आगे चलकर क्षैतिज जेनेटिक स्थानान्तरण को समझने का रास्ता खोला। यानी बैक्टीरिया आपस में जेनेटिक सूचना का आदान-प्रदान कर सकते हैं। इससे यह भी स्पष्ट हुआ कि जेनेटिक सूचनाओं में फेरबदल मात्र लैंगिक प्रजनन या उत्परिवर्तनों के द्वारा नहीं होता।

लेडरबर्ग ने *ई. कोलाई* पर प्रयोगों के आधार पर बैक्टीरिया के बीच जेनेटिक हस्तान्तरण की एक नवीन विधि की खोज भी की थी, जो बैक्टीरियोफेज के मार्फत होती है। इसे उन्होंने ट्रांसडक्शन की संज्ञा दी थी। 1958 में लेडरबर्ग, जॉर्ज बीडल और ई. टेटम को संयुक्त रूप से नोबेल से सम्मानित किया गया था। लेडरबर्ग को यह पुरस्कार बैक्टीरिया में जेनेटिक सामग्री के संगठन तथा पुनर्संयोजन सम्बन्धी खोज के लिए दिया गया, जो *ई. कोलाई* पर हुए प्रयोगों से सम्भव हुई थीं।

ट्रांसडक्शन

दरअसल, बैक्टीरिया में जेनेटिक फेरबदल की दो विधियाँ तो ज्ञात थीं – एक थी उत्परिवर्तन यानी स्वयं बैक्टीरिया की जेनेटिक संरचना में परिवर्तन और दूसरी थी संयुग्मन। लेडरबर्ग और ज़िंडर ने एक तीसरी विधि की खोज की थी – साल्मोनेला नामक बैक्टीरिया के एक प्रतिरोधी स्ट्रेन के साथ प्रयोग करके।

वे यह देखना चाहते थे कि क्या उनके प्रयोग वास्तव में जेनेटिक पुनर्संयोजन को दर्शाते हैं। उन्होंने एक U आकार की नली लेकर उसके निचले मोड़ पर एक अत्यन्त महीन काँच का फिल्टर फिट कर दिया। इसमें उन्होंने एक माध्यम भर दिया

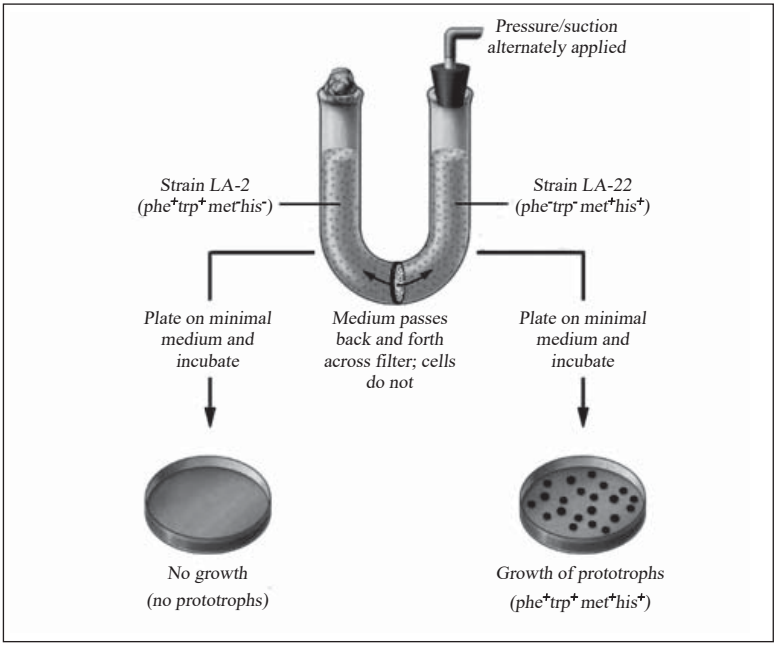

चित्र-5: *लेडरबर्ग-ज़िंडर प्रयोग। आनुवंशिक परिवर्तनशीलता का स्थानान्तरण - ट्रांसडक्शन।*

जिसमें उनके द्वारा चुने गए साल्मोनेला के उत्परिवर्तित रूपों के लिए ज़रूरी पोषक तत्व नहीं थे।

फिर उन्होंने एक-एक उत्परिवर्ती स्ट्रेन को नली की दोनों भुजाओं में डाल दिया और माध्यम को एक पम्प की मदद से दोनों तरफ बहाते रहे। उम्मीद थी कि कोई पुनर्संयोजन नहीं होगा क्योंकि बर्नार्ड डेविस ऐसे ही एक प्रयोग में दर्शा चुके थे कि पुनर्संयोजन के लिए बैक्टीरिया कोशिकाओं के बीच सीधे सम्पर्क ज़रूरी है।

लेकिन आश्चर्जनक रूप से, कई बैक्टीरिया पनपे और संख्या-वृद्धि भी करते दिखे। यानी पुनर्संयोजन हुआ था। और इसने दोनों उत्परिवर्तियों को अपनी-अपनी पोषण की कमी की भरपाई करने में मदद की थी।

इसका मतलब था कि ऐसा कोई एजेंट था जो उस महीन फिल्टर में से आ-जा सकता था। जब उन्होंने उस एजेंट का शुद्धिकरण किया तो पाया कि वह न तो शुद्ध डीएनए से बना था और न ही आरएनए क्योंकि इन्हें तोड़ने वाले एंज़ाइम का उस पर कोई असर नहीं हुआ। दरअसल, यह एक बैक्टीरियोफेज निकला।

हुआ यह था कि लेडरबर्ग और ज़िंडर ने जिस साल्मोनेला का उपयोग किया था, वह काफी पहले एक लायसोजेनिक वायरस से संक्रमित था, जिसका डीएनए साल्मोनेला के जीनोम में जुड़ गया था और बैक्टीरिया के प्रजनन के साथ इस वायरस डीएनए की प्रतिलिपियाँ भी आगे बढ़ती गई थीं। प्रयोग के दौरान वह वायरस डीएनए से अलग हो गया, खुद की प्रतिलिपियाँ बनाने लगा और फिर बैक्टीरिया कोशिका फट गई और वायरस बाहर रखे माध्यम में जा पहुँचा। बैक्टीरिया जीनोम से अलग होने से पहले वह वायरस अपने साथ बैक्टीरिया के डीएनए के कुछ खण्ड भी लेता गया। फिल्टर वायरसों की आवाजाही के लिए उपयुक्त था। तो वायरसों के साथ बैक्टीरिया के जीन्स भी नली की दूसरी भुजा में पहुँचे, वहाँ उन्होंने उस भुजा के बैक्टीरिया को संक्रमित किया और उनके जीनोम्स में फिट हो गए। लेडरबर्ग और ज़िंडर का निष्कर्ष था कि नए-नए संक्रमित बैक्टीरिया में वे जीन पहुँच गए जो उनके पोषण सम्बन्धी अभाव की भरपाई करते थे।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना लाज़मी है कि वायरस किसी बैक्टीरिया को संक्रमित करने के बाद दो रास्ते अपना सकता है – लायसोजेनिक और लायसिस। लायसोजेनिक मार्ग में होता यह है कि वायरस अपना पूरा जीनोम बैक्टीरिया के जीनोम में जोड़कर सुप्त हो जाता है। फिर बैक्टीरिया की कोशिका के विभाजन के साथ वायरस के जीनोम की भी प्रतिलिपि बनती रहती है। मौका आने पर वायरस का जीनोम अलग होकर स्वयं की प्रतिलिपियाँ बनाने लगता है (यानी नए वायरस बनने लगते हैं) और बैक्टीरिया कोशिका को फोड़कर बाहर निकल आते हैं। लायसिस की प्रक्रिया में वायरस संक्रमण के तत्काल बाद अपनी प्रतिलिपियाँ बनाने लगता है और कोशिका के विनाश का कारण बन जाता है। कतिपय तनाव की परिस्थितियों में (जैसे पराबैंगनी विकिरण) वायरस का जीनोम मेज़बान के गुणसूत्र से अलग होकर अपनी प्रतिलिपियाँ बनाने लगता है और मेज़बान कोशिका को फोड़कर सारे वायरस बाहर निकल जाते हैं।

लायसोजेनी की क्रियाविधि का खुलासा आंद्रे ल्वॉफ ने *ई. कोलाई* पर

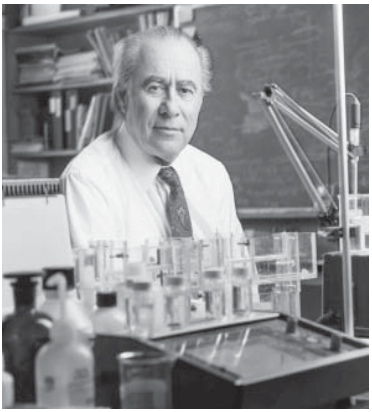

चित्र-6: *नॉर्टन ज़िंडर*

काम करते हुए किया था। यह सही है कि ट्रांसडक्शन प्रक्रिया की खोज साल्मोनेला में हुई थी लेकिन इसे मनचाहा जीन हस्तान्तरण की एक विधि के रूप में *ई. कोलाई* में ही विकसित किया गया।

ट्रांसडक्शन की खोज और आगे का विकास बुनियादी महत्व का साबित हुआ। एक तो इससे स्पष्ट हुआ कि प्रोकेरियोट्स (जिनमें एक सुपरिभाषित केन्द्रक नहीं होता) में ज़रूरी नहीं कि दो जीवों की पूरी-की-पूरी जेनेटिक सामग्री का पुनर्संयोजन हो। उनमें आपस में डीएनए के छोटे-छोटे खण्ड का लेनदेन भी होता है। दूसरी ओर केन्द्रक युक्त (यूकेरियोट्स) कोशिकाओं में पूरी-की-पूरी जेनेटिक सामग्री का मिलन ज़रूरी होता है। प्रोकेरियोट्स और यूकेरियोट्स के बीच विभेद का यह मापदण्ड आणविक जीव विज्ञान की एक बुनियादी अवधारणा है।

बहरहाल, ट्रांसडक्शन ने चिकित्सा और जैव-टेक्नॉलॉजी के क्षेत्र में भी भारी योगदान दिया है। इसने बैक्टीरिया में एंटीबायोटिक प्रतिरोध के त्वरित प्रसार की एक नई प्रक्रिया का खुलासा किया।

ट्रांसडक्शन जेनेटिक इंजीनियरिंग में भी महत्वपूर्ण साबित हुआ है। इसकी मदद से जीन्स का हस्तान्तरण करवाया जा सकता है। सन् 1970 के दशक में वैज्ञानिक डीएनए के मनचाहे खण्डों को बैक्टीरियोफेज में जोड़कर उसे किसी अन्य बैक्टीरिया में पहुँचाना सीख गए थे। फिर सन् 1990 के दशक में किसी वायरस-वाही की मदद से किसी गड़बड़ जीन के स्थान पर स्वस्थ जीन पहुँचाना जीन थेरपी का आधार बना।

ट्रांसडक्शन ने *ई. कोलाई* के जीनोम में फेरबदल करने की तकनीक उपलब्ध कराई। लिहाज़ा, *ई. कोलाई* के जीनोम में परिवर्तन करके उससे मनचाहे रसायन भी बनवाए जा सकते हैं।

बैक्टीरिया में जेनेटिक पुनर्संयोजन की एक विधि और होती है – जेनेटिक रूपान्तरण (transformation) जिसका ज़िक्र इस लेख में नहीं किया जा रहा चूँकि उसकी खोज में *ई. कोलाई* की भूमिका नहीं थी।

एक महत्वपूर्ण तकनीक

ई. कोलाई पर काम करते हुए लेडरबर्ग और एस्थर ने रेप्लिका प्लेटिंग नामक एक तकनीक का विकास किया जो बैक्टीरिया की छँटाई की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण साबित हुई। इसका उपयोग करके यह पता लगाया जा सकता था कि कौन-से बैक्टीरिया एंटीबायोटिक के या संक्रामक वायरस के प्रतिरोधी हैं। इसमें किया यह जाता है कि एक तश्तरी (मास्टर प्लेट) में बैक्टीरिया कॉलोनियों को पनपने दिया जाता है। फिर इस प्लेट से इन बैक्टीरिया कॉलोनी की छाप को एक अन्य

बैक्टीरियाविहीन प्लेट पर आरोपित कर दिया जाता है। यह मास्टर प्लेट की प्रतिकृति होती है। इसके बाद एंटीबायोटिक या संक्रामक वायरस को उस दूसरी प्लेट पर छिड़का जाता है। तब सिर्फ वही कॉलोनी विकसित होंगी जो प्रतिरोधी हैं। इस तरह से मास्टर प्लेट पर प्रतिरोधी कॉलोनियों की स्थिति पता चल जाती है।

रेप्लिका प्लेटिंग के प्रयोगों से भी स्पष्ट हुआ कि बैक्टीरिया में प्रतिरोध उत्परिवर्तनों का परिणाम है, न कि चयनकारी वातावरण के प्रति किसी अनुकूलन का।

जीन नियमन

जीन नियमन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा कोशिकाएँ नियंत्रित करती हैं कि कौन-से जीन व्यक्त किए जाएँ और किस हद तक। विशिष्ट जीन उत्पादों से कोशिकीय विभेदन, विकास और पर्यावरणीय परिवर्तनों के प्रति प्रतिक्रिया निर्धारित होती है। यानी यह प्रक्रिया किसी भी जीव के लिए निहायत महत्वपूर्ण है।

जीन नियमन का अध्ययन पेरिस के पाश्चर इंस्टीट्यूट में शुरू हुआ था। जीन नियमन के विकास में तीन लोगों का योगदान प्रमुख रहा – आंद्रे ल्वॉफ, जेकेस मोनोड और फ्रांस्वा जेकब। और ये तीनों ही नाज़ी अत्याचारों के खिलाफ संघर्ष में गहराई से जुड़े थे।

सन् 1941 में जैकेस मोनोड ने *ई. कोलाई* तथा *बैसिलस सब्टिलिस* पर काम करते हुए डाइऑक्सी की खोज की थी। डाइऑक्सिक प्रयोग एक ऐसा प्रयोग है जिसमें एक जीव को दो अलग-अलग शर्कराओं (जैसे ग्लूकोज़ और लैक्टोज़) के मिश्रण वाले माध्यम में पनपाया जाता है। इस प्रयोग में, जीव पहले एक शर्करा (प्रायः ग्लूकोज़) का उपयोग करता है। इस दौरान, जीव तेज़ी-से बढ़ता है। जब ग्लूकोज़ समाप्त हो जाता है, तो जीव को लैक्टोज़ का उपयोग करने के लिए अनुकूलित होने में कुछ समय लगता है। इस दौरान, जीव की वृद्धि धीमी हो जाती है। इसके बाद जीव लैक्टोज़ का उपयोग करना शुरू कर देता है। वृद्धि का यह दूसरा चरण पहले चरण की तुलना में धीमा होता है।

यह प्रयोग जीवों द्वारा शर्करा के चयापचय और एंज़ाइम संश्लेषण की प्रक्रिया को समझने में मदद करता है। और जीन नियमन के अध्ययन के लिए भी महत्वपूर्ण है। यह प्रयोग विभिन्न प्रकार के जीवों में चयापचय अनुकूलन का अध्ययन करने के लिए भी उपयोगी है। मोनोड ने इसे एंज़ाइम अवरोध या एंज़ाइमों के दमन का परिणाम बताया। मोनोड की प्रारम्भिक व्याख्या इस विचार पर केन्द्रित थी कि लैक्टोज़ चयापचय के लिए आवश्यक एंज़ाइम ग्लूकोज़ की उपस्थिति में बाधित कर दिए जाते हैं, यानी दबा दिए जाते हैं।

मोनोड ने आगे बढ़कर *ई. कोलाई* में लैक्टोज़ तंत्र का जेनेटिक विश्लेषण किया। उन्होंने स्थापित किया कि *ई. कोलाई* में बीटा-गैलेक्टोसिडेज़ के उत्पादन को विशिष्ट उद्दीपनों पर शुरू करवाया जाता है। ऐसा एक उद्दीपन होता है, लैक्टोज़ की उपस्थिति।

जीन नियमन का मॉडल

जेकब और मोनोड ने *ई. कोलाई* में जीन नियमन की प्रक्रिया का गहन अध्ययन किया। इसी दौरान उन्होंने संदेशवाहक यानी मेसेंजर आरएनए (एम-आरएनए) की खोज की थी। एम-आरएनए ही डीएनए पर उपस्थित जेनेटिक सूचना को राइबोसोम तक ले जाने का काम करता है। इसके बाद उन्होंने जीन नियमन का एक मॉडल प्रस्तावित किया। इस मॉडल के अनुसार, किसी एक प्रक्रिया के लिए ज़िम्मेदार जीन्स ऑपेरॉन नामक समूह में एकीकृत होते हैं। यह भी कहा गया था कि एक ही एम-आरएनए एकाधिक सम्बन्धित प्रोटीन्स का वाहक हो सकता है। इस मॉडल से यह समझने में मदद मिली कि कोशिका में विभिन्न पर्यावरणीय परिस्थितियों में प्रोटीन उत्पादन का समन्वय कैसे किया जाता है। जेकब और मोनोड ने *ई. कोलाई* में लैक ऑपेरॉन (lac operon) के उदाहरण से इसे स्पष्ट किया था।

यह ऑपेरॉन *ई. कोलाई* में लैक्टोज़ नामक शर्करा के पाचन के लिए ज़रूरी एंज़ाइम के निर्माण का नियमन करता है। जेकब और मोनोड यह दर्शाने में सफल रहे थे कि इस ऑपेरॉन की अभिव्यक्ति एक दमनकारी (repressor) जीन से संचालित होती है जो लैक्टोज़ की अनुपस्थिति में डीएनए के एक हिस्से से जुड़ जाता है और उसकी अभिव्यक्ति को बाधित कर देता है। जब लैक्टोज़ उपस्थित होता है तो वह जाकर इस दमनकारी जीन से जुड़कर उसकी क्रिया को रोक देता है और डीएनए से एम-आरएनए का निर्माण (प्रतिलेखन) शुरू हो जाता है। इस मॉडल ने न सिर्फ एम-आरएनए की उपस्थिति प्रमाणित की बल्कि यह जटिल जीवों में जीन नियमन को समझने का मॉडल बना।

इस पूरी प्रक्रिया को कदम-दर-कदम समझने और एक सम्पूर्ण चित्र तैयार करने में कई वैज्ञानिकों और कई सूक्ष्म जीवों की भूमिका रही है, जिनमें *ई. कोलाई* ने भी हाथ बँटाया। और जीन नियमन की प्रक्रिया का खुलासा करने के लिए जेकब और मोनोड (साथ में आंद्रे ल्वॉफ) को 1965 में नोबेल से नवाज़ा गया।

डीएनए से प्रोटीन का सफर

कई वैज्ञानिकों के शोध कार्य से यह तो स्पष्ट हो गया था कि डीएनए में न्यूक्लियोटाइड के क्रम से तय होता है कि कौन-से प्रोटीन बनेंगे।

बैक्टीरिया में लैंगिक प्रजनन

एफ. जेकब और ई. वोलमैन ने बैक्टीरिया में लैंगिक प्रक्रिया का खुलासा किया और बैक्टीरिया के गुणसूत्र की वृत्ताकार बनावट को उजागर किया था। इसके लिए उन्होंने एक अन्य प्रयोगशाला में पृथक किए गए *ई. कोलाई* के एक स्ट्रेन की मदद ली थी।

लेकिन यह प्रक्रिया कैसे काम करती है, इसे लेकर कई सारे विचार थे।

एक विचार यह था कि डीएनए के अणु पर ही प्रोटीन का संश्लेषण होता है (जॉर्ज गैमोव)। दूसरी ओर, एक विचार यह भी था कि प्रोटीन का संश्लेषण डीएनए के अणु पर नहीं बल्कि कोशिका द्रव्य में होता है और इसके लिए आरएनए की ज़रूरत होती है। लेकिन यह स्पष्ट नहीं था कि यह प्रक्रिया होती कैसे है और इसमें आरएनए की क्या भूमिका है।

फिर सन् 1940 के दशक में ज़्यां ब्रेश और टॉरब्योर्न कैस्परसन ने *ई. कोलाई* व अन्य जीवों पर काम करके बताया कि आरएनए ज़्यादातर कोशिका द्रव्य में पाया जाता है और जिस कोशिका में प्रोटीन संश्लेषण तेज़ गति से हो रहा हो, उसमें आरएनए की मात्रा भी अधिक होती है। इससे लगा कि प्रोटीन संश्लेषण और आरएनए के बीच कुछ सम्बन्ध ज़रूर है।

आरएनए की भूमिका की पहली परिकल्पना आंद्रे बोइविन के 1947 के शोध पत्र में सामने आई थी। यह शोध पत्र फ्रेंच भाषा में लिखा गया था लेकिन अँग्रेज़ी में लिखे गए सम्पादकीय में पर्चे का सार इन शब्दों में व्यक्त किया गया था: 'डीएनए नामक विशाल अणु एक अन्य विशाल अणु आरएनए के निर्माण का संचालन करता है और ये आरएनए अणु कोशिका द्रव्य में प्रोटीन निर्माण का नियंत्रण करते हैं'।

इसके बाद 1950 के दशक में वैज्ञानिकों ने *ई. कोलाई* के कोशिका द्रव्य का विश्लेषण करके आरएनए की प्रचुर संरचनाएँ खोजीं जिन्हें उस समय माइक्रोसोमल पार्टिकल कहा गया। आगे चलकर इनका नाम राइबोसोम हुआ और यह पहचाना गया कि राइबोसोम प्रोटीन संश्लेषण का प्रमुख पात्र है। राइबोसोम पर उपस्थित आरएनए के आधार पर यह विचार बना कि राइबोसोम ही प्रोटीन संश्लेषण का स्थल है।

धीरे-धीरे डीएनए से प्रोटीन तक की पूरी प्रक्रिया स्पष्ट हुई। डीएनए से संदेशवाहक आरएनए (mRNA) बनता है जो जाकर राइबोसोम से जुड़ जाता है। यहाँ छोटे-छोटे आरएनए अणु (ट्रांसफर आरएनए - tRNA) बनते हैं जो कोशिका द्रव्य में से एक-एक

अमीनो अम्ल को राइबोसोम तक लाते हैं जिन्हें जोड़कर प्रोटीन बनता है।

इन खोजों ने न सिर्फ जीव विज्ञान में समझ को आगे बढ़ाया बल्कि इसने आजकल हो रहे जीव वैज्ञानिक नवाचारों का मार्ग भी प्रशस्त किया। एम-आरएनए की खोज ने चिकित्सा के क्षेत्र में नए विचारों को जन्म दिया।

रीकॉम्बिनेंट टेक्नॉलॉजी

ई. कोलाई तथा उसे संक्रमित करने वाले वायरस रिकॉम्बिनेंट डीएनए टेक्नॉलॉजी के विकास में प्रमुख रहे हैं। यह टेक्नॉलॉजी डब्ल्यू. आर्बर द्वारा रेस्ट्रिक्शन मॉडिफिकेशन तंत्र की खोज पर आधारित थी।

रेस्ट्रिक्शन मॉडिफिकेशन तंत्र की खोज भी *ई. कोलाई* और बैक्टीरियोफेज पर किए गए प्रयोगों से ही सम्भव हुई थी। सबसे पहले तो यह देखा गया कि कुछ फेज किसी एक बैक्टीरिया स्ट्रेन पर विकसित होने के लिए अनुकूलित होते हैं, लेकिन किसी अन्य स्ट्रेन पर नहीं। इसका मतलब है कि बैक्टीरिया में परदेशी डीएनए के विरुद्ध कुछ प्रतिरोध प्रक्रिया मौजूद होती है।

इस अवलोकन ने स्टुअर्ट लिन और वर्नर आर्बर को *ई. कोलाई* में से दो तरह के एंज़ाइम पृथक करने को प्रेरित किया – रेस्ट्रिक्शन एंज़ाइम तथा मॉडिफिकेशन एंज़ाइम। आगे चलकर हैमिल्टन स्मिथ ने एक बैक्टीरिया *हीमोफिलस इंफ्लुएंज़े* में से एक रेस्ट्रिक्शन एंज़ाइम शुद्ध रूप में प्राप्त भी किया। लिन और आर्बर ने एक मॉडिफिकेशन एंज़ाइम (मिथायलेज़) प्राप्त किया जो डीएनए पर सुरक्षात्मक मिथाइल समूह जोड़ता है और एक रेस्ट्रिक्शन एंज़ाइम मिथाइल समूह रहित सारे डीएनए को तोड़ देता है। यानी स्वयं बैक्टीरिया का डीएनए मिथाइल समूह युक्त होने के चलते बच जाएगा जबकि बाहर से आया डीएनए नष्ट कर दिया जाएगा।

इस खोज का महत्व स्वत: स्पष्ट है – इसने हमें डीएनए के साथ खिलवाड़ से एक महत्वपूर्ण औज़ार उपलब्ध कराया है।

सुशील जोशी: *एकलव्य* द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

लेख में उल्लिखित वैज्ञानिकों के नाम यहाँ अँग्रेज़ी में दिए गए हैं, ताकि आप उनके बारे में अन्य जानकारी आसानी-से खोज सकें।

Theodor Escherich, Rudolf Massini, M. Delbrück, Alfred D. Hershey, M. Chase, Seymour Benzer, J. Lederberg, Norton Zinder, E. Tatum, A. Lwoff, F. Jacob, E. Wollman, J. Monod, Max Delbrück, Salvador E. Luria, Martha Chase, Jean Brachet, Torbjörn Caspersson, André Boivin, Werner Arbe, Stuart Linn